Leadership, Education, Personality: An Interdisciplinary Journal ISSN: 2524-6178
www.sibe.rpress.co.in, Vol. 17, Issue 09 September 2022, UGC CARE 1

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष चुनौतियाँ

Dr. Neelam
Associate Professor of Political Science
Banwari Lal Jindal Suiwala College, Tosham

संक्षेप

भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जो संविधान में निहित मूल्यों जैसे समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता और न्याय पर आधारित है। हालांकि, आज यह कई गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है जो इसकी मजबूती और विश्वसनीयता को प्रभावित करती हैं। राजनीति का अपराधीकरण लोकतंत्र की पवित्रता को कमजोर करता है, जहाँ आपराधिक पृष्ठभूमि वाले नेता सत्ता में आ जाते हैं। इसके साथ ही, भ्रष्टाचार प्रशासनिक तंत्र में पारदर्शिता और जवाबदेही की भावना को क्षीण करता है। जाति, धर्म और भाषा के आधार पर सामाजिक विभाजन और धार्मिक असहिष्णुता समाज को बाँटने का कार्य करते हैं, जिससे सांप्रदायिक तनाव और सामाजिक असमानता बढ़ती है। मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर बढ़ते नियंत्रण लोकतांत्रिक संवाद को दबाते हैं और जनता की आवाज कमजोर होती है। संवैधानिक संस्थाओं पर कार्यपालिका के हस्तक्षेप से उनकी स्वायत्तता प्रभावित होती है, जो लोकतंत्र के संतुलन के लिए हानिकारक है। इन समस्याओं का समाधान नागरिक जागरूकता, नैतिक राजनीति, स्वतंत्र संस्थाएँ और समावेशी विकास के माध्यम से संभव है। यदि इन चुनौतियों का समय रहते समाधान नहीं हुआ, तो लोकतंत्र केवल एक औपचारिक प्रक्रिया बनकर रह जाएगा। अतः एक उत्तरदायी, सक्रिय और सजग नागरिक समाज की भूमिका अत्यंत आवश्यक है।

मुख्य कीवर्ड :लोकतंत्र, अपराधीकरण, भ्रष्टाचार, असहिष्णुता, संस्थागत स्वतंत्रता

परिचय

भारतीय लोकतंत्र विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रों में से एक है, जिसकी नींव संविधान में निहित समानता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत ने लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाया और सार्वभौमिक मताधिकार के सिद्धांत को लागू किया, जिससे हर नागरिक को समान रूप से राजनीतिक भागीदारी का अवसर मिला। समय के साथ भारत ने अनेक चुनावों, सरकारों के बदलाव और नीतिगत सुधारों के माध्यम से लोकतंत्र को जीवंत बनाए रखा है। फिर भी, जैसे-जैसे समाज और राजनीति में बदलाव आए, लोकतंत्र के समक्ष कई नई और जटिल चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आई हैं। इनमें चुनाव प्रणाली की पारदर्शिता, विधायिका और कार्यपालिका की जवाबदेही, न्यायपालिका की स्वतंत्रता, तथा मीडिया की निष्पक्षता जैसे क्षेत्र शामिल हैं।

इन चुनौतियों के साथ-साथ सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता और भ्रष्टाचार जैसे सामाजिक व राजनीतिक तत्व भी भारतीय लोकतंत्र को कमजोर करने का कार्य करते हैं। आज भी कई क्षेत्रों में मतदाताओं को दबाव

में मतदान करना पड़ता है या धनबल और बाहुबल का प्रयोग होता है। राजनीतिक दलों के बीच वैचारिक संवाद की जगह व्यक्तिगत आरोप-प्रत्यारोप का माहौल बनता जा रहा है, जिससे लोकतांत्रिक विमर्श कमजोर हो रहा है। इसके अतिरिक्त, लोकतंत्र की सफलता के लिए एक जागरूक और शिक्षित नागरिक समाज का होना आवश्यक है, किंतु भारत में अब भी राजनीतिक साक्षरता की कमी एक बड़ी बाधा बनी हुई है। सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के साथ फेक न्यूज़ और नफरत फैलाने वाली सूचनाएं लोकतांत्रिक संवाद को और अधिक जटिल बना देती हैं। अतः यह आवश्यक है कि इन चुनौतियों की पहचान कर समय रहते उनका समाधान ढूंढ़ा जाए ताकि भारतीय लोकतंत्र और अधिक मजबूत, समावेशी और उत्तरदायी बन सके।

भारतीय लोकतंत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय लोकतंत्र की जड़ें अत्यंत प्राचीन और समृद्ध परंपराओं में निहित हैं। भारत में लोकतांत्रिक विचारधाराओं का उद्भव वैदिक काल में ही हो गया था, जहाँ 'सभा' और 'समिति' जैसे जनसंगठनों के माध्यम से जनमत को महत्व दिया जाता था। महाजनपद काल में भी कुछ गणराज्य जैसे वैशाली, लिच्छवी, और शाक्य समाज लोकतांत्रिक रूप से संगठित थे, जहाँ शासन का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता था। यद्यपि यह व्यवस्था पूर्णतः आधुनिक लोकतंत्र के समान नहीं थी, फिर भी यह स्पष्ट संकेत देती है कि भारत में जनभागीदारी और संवाद पर आधारित शासन की परंपरा प्राचीन रही है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म जैसे धार्मिक आंदोलनों ने भी विचार, अभिव्यक्ति और विचारधारा की स्वतंत्रता को बढ़ावा दिया, जो लोकतांत्रिक मूल्यों के अनुरूप था। मध्यकाल में जब भारत पर विभिन्न विदेशी शासकों का आगमन हुआ, तब लोकतांत्रिक संस्थाएं कमजोर हुईं, और सामंतवादी, तानाशाही शासन पद्धति हावी हो गई। हालांकि, भक्ति और सूफी आंदोलनों ने सामाजिक समानता और सहिष्णुता को प्रोत्साहित कर लोकतंत्र की भावना को जीवित बनाए रखा।

आधुनिक भारतीय लोकतंत्र की नींव ब्रिटिश उपनिवेशवाद के काल में पड़ी, जब औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम प्रारंभ हुआ। 19वीं सदी में भारतीय समाज सुधारकों और शिक्षाविदों ने राजनीतिक जागरूकता फैलाने का कार्य किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885) से राजनीतिक संगठनबद्ध संघर्ष की शुरुआत हुई, जिसने जनता को अपने अधिकारों के प्रति सजग किया। गांधीजी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम ने लोकतांत्रिक मूल्यों जैसे सत्य, अहिंसा, समानता और जनभागीदारी को अपने आंदोलन का आधार बनाया। भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ, जिसमें लोकतंत्र को भारत की शासन प्रणाली का आधार बनाया गया। भारतीय संविधान न केवल सार्वभौमिक मताधिकार प्रदान करता है, बल्कि विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच स्पष्ट शक्तियों के विभाजन, मूल अधिकारों की गारंटी और एक स्वतंत्र चुनाव आयोग की स्थापना के माध्यम से लोकतंत्र को सुदृढ़ करता है। इस प्रकार भारतीय लोकतंत्र, हजारों वर्षों की सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक यात्रा का परिणाम है, जो विविधताओं के बीच एकता और जनसरोकारों पर आधारित शासन प्रणाली की मिसाल प्रस्तुत करता है।

लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति और प्रासंगिकता

भारत, विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र, आज एक ऐसे मोड़ पर खड़ा है जहाँ उसकी लोकतांत्रिक संरचना और मूल्यों की परीक्षा हो रही है। स्वतंत्रता के बाद से, भारत ने एक मजबूत लोकतांत्रिक प्रणाली स्थापित की है, जिसमें विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और मीडिया जैसे चार स्तंभ शामिल हैं। इन संस्थाओं ने देश को स्थिरता और विकास की दिशा में अग्रसर किया है। चुनाव आयोग की निष्पक्षता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और मीडिया की सक्रियता ने लोकतंत्र को सशक्त बनाया है।

हालांकि, वर्तमान समय में भारतीय लोकतंत्र कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। इनमें प्रमुख हैं: राजनीतिक ध्रुवीकरण, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश, मीडिया की स्वतंत्रता में कमी, और नागरिक स्वतंत्रताओं का हनन। रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स के अनुसार, भारत का प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक में स्थान गिरकर 161वां हो गया है, जो चिंता का विषय है। इसके अतिरिक्त, नागरिक स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंध और असहमति की आवाजों को दबाने के प्रयास लोकतंत्र की आत्मा के विपरीत हैं।

इन चुनौतियों के बावजूद, भारतीय लोकतंत्र की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। यह प्रणाली नागरिकों को सरकार के प्रति उत्तरदायी बनाती है और उन्हें अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने का अवसर देती है। लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक है कि नागरिक जागरूक रहें, संस्थाओं की स्वतंत्रता बनाए रखें, और संविधान के मूल्यों का सम्मान करें। केवल तभी हम एक समावेशी, न्यायपूर्ण और सशक्त लोकतंत्र की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं।

सामाजिक असमानता और जातिवाद

1. जाति आधारित भेदभाव

भारत में जाति व्यवस्था एक प्राचीन सामाजिक ढांचा है, जिसने समाज को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया। यह व्यवस्था जन्म पर आधारित होती है और व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों को सीमित करती है। जाति आधारित भेदभाव का सबसे अधिक प्रभाव अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों पर पड़ता है। ऐतिहासिक रूप से इन वर्गों को मंदिरों में प्रवेश, शिक्षा प्राप्त करने, सार्वजनिक संसाधनों के उपयोग, और सामाजिक मेल-जोल जैसे मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया। आज भी, कानूनन निषिद्ध होने के बावजूद जातीय भेदभाव ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में मौजूद है।

जातिगत भेदभाव का असर न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि समाज की समग्र संरचना पर भी पड़ता है। यह सामाजिक एकता को बाधित करता है और कमजोर वर्गों को मुख्यधारा से दूर कर देता है। शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और न्याय जैसी सेवाओं तक असमान पहुंच समाज में असंतुलन पैदा करती है। दलितों और आदिवासियों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार, हिंसा और सामाजिक बहिष्कार की घटनाएँ समय-समय

पर सामने आती हैं, जो यह दिखाता है कि अभी भी समानता के आदर्श से हम दूर हैं। इस भेदभाव को समाप्त करने के लिए संविधान में समानता का अधिकार, छुआछूत की समाप्ति और संरक्षण प्रदान करने वाले कानून बनाए गए हैं। इसके बावजूद, जातिगत सोच और सामाजिक पूर्वाग्रह अब भी मानसिकता में गहराई से मौजूद हैं। अतः केवल कानूनी प्रावधान ही नहीं, बल्कि शिक्षा, जागरूकता और सामाजिक सुधार के प्रयासों के माध्यम से ही जाति आधारित भेदभाव को जड़ से समाप्त किया जा सकता है।

2. सामाजिक समावेशन की चुनौतियाँ

सामाजिक समावेशन का तात्पर्य है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर, अधिकार और संसाधनों में भागीदारी मिले, जिससे वे समाज की मुख्यधारा में सक्रिय रूप से जुड़ सकें। भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में जहाँ जाति, धर्म, भाषा, लिंग और वर्ग के आधार पर विभाजन है, वहाँ सामाजिक समावेशन एक बड़ी चुनौती बनकर उभरता है। विशेष रूप से दलित, आदिवासी, महिलाएं, विकलांग और धार्मिक अल्पसंख्यक समाज के ऐसे वर्ग हैं जो ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रहे हैं।

समावेशन की सबसे बड़ी चुनौती सामाजिक पूर्वाग्रह और भेदभाव की मानसिकता है, जो व्यक्ति के विकास के रास्ते में बाधा उत्पन्न करती है। इन वर्गों के लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और न्याय प्रणाली में समान अवसर नहीं मिल पाते। स्कूलों में भेदभाव, कार्यस्थल पर प्रतिनिधित्व की कमी, तथा न्यायिक प्रक्रिया में असमान व्यवहार सामाजिक समावेशन को कमजोर करते हैं। इसके अलावा, डिजिटल डिवाइड और सूचना तक पहुंच की असमानता भी आज के दौर में एक नई चुनौती के रूप में सामने आई है। सरकार और सामाजिक संगठनों द्वारा कई कार्यक्रम और योजनाएँ चलाई जा रही हैं, जिनका उद्देश्य हाशिये पर खड़े वर्गों को सशक्त बनाना है। फिर भी, इन योजनाओं के क्रियान्वयन में पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी के कारण अपेक्षित परिणाम नहीं मिल पा रहे हैं। सामाजिक समावेशन के लिए केवल नीति निर्माण पर्याप्त नहीं है, बल्कि समाज की सोच में बदलाव, सहभागिता आधारित विकास और संस्थागत समर्थन आवश्यक है। जब तक समाज हर व्यक्ति को सम्मान और समान अवसर नहीं देगा, तब तक समावेशन एक आदर्श मात्र रहेगा।

3. आरक्षण नीति और उसके प्रभाव

भारतीय संविधान ने सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए आरक्षण नीति का प्रावधान किया है। इसका उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समान अवसर देना है। अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के लिए आरक्षण एक सुधारात्मक कदम है, जिससे सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके। हाल ही में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) को भी आरक्षण प्रदान किया गया है, जिससे नीति का दायरा और व्यापक हो गया है। आरक्षण नीति ने सकारात्मक प्रभाव डाले हैं। इससे दलितों और पिछड़े वर्गों को

शिक्षा और सरकारी नौकरियों में प्रवेश के अवसर प्राप्त हुए हैं, जिससे उनका आत्मविश्वास और सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है। उच्च शिक्षा में बढ़ती सहभागिता और प्रशासनिक सेवाओं में इन वर्गों की उपस्थिति इसकी सफलता को दर्शाती है। साथ ही यह नीति सामाजिक संतुलन और प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने की दिशा में एक प्रभावी कदम रही है। इस नीति को लेकर विवाद भी हैं। कुछ लोग इसे योग्यता विरोधी मानते हैं, जबकि कुछ का मानना है कि यह अब केवल कुछ गिने-चुने लाभार्थियों तक सीमित रह गई है। आरक्षण से जुड़े आंकड़ों और क्रियान्वयन में पारदर्शिता की कमी के कारण इसका प्रभाव असमान रूप से पड़ा है। साथ ही, 'क्रीमी लेयर' की अवधारणा और आरक्षण की समयसीमा को लेकर भी बहस होती रही है। इसके बावजूद, आरक्षण अभी भी एक आवश्यक सामाजिक उपाय है, जिसे प्रभावी और न्यायसंगत ढंग से लागू करने की आवश्यकता है ताकि वह वास्तव में वंचितों के जीवन को सशक्त बना सके।

धार्मिक असहिष्णुता और सांप्रदायिकता

धार्मिक असहिष्णुता और सांप्रदायिकता भारतीय समाज के लिए गंभीर सामाजिक चुनौतियाँ हैं, जो देश की एकता, अखंडता और लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करती हैं। भारत एक बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी राष्ट्र है, जहाँ हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन और अन्य अनेक धार्मिक समुदाय सह-अस्तित्व में रहते हैं। लेकिन कभी-कभी राजनीतिक लाभ, सामाजिक पूर्वाग्रह और कट्टरपंथी विचारधाराओं के चलते विभिन्न समुदायों के बीच तनाव उत्पन्न होता है। धार्मिक असहिष्णुता तब प्रकट होती है जब एक धर्म के अनुयायी दूसरों के विश्वासों, परंपराओं और अधिकारों को स्वीकार नहीं करते और नफरत, भेदभाव या हिंसा की प्रवृत्ति अपनाते हैं। यह प्रवृत्ति सांप्रदायिकता को जन्म देती है, जिसमें धर्म के नाम पर समूहों के बीच विभाजन, टकराव और हिंसा होती है। भारत के इतिहास में कई सांप्रदायिक दंगे जैसे 1947 का विभाजन, 1984 का सिख विरोधी दंगा, 1992 के बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद की हिंसा, और 2002 का गुजरात दंगा इसका उदाहरण हैं। सांप्रदायिकता केवल शारीरिक हिंसा तक सीमित नहीं होती, यह सामाजिक बहिष्कार, घृणा फैलाने वाले भाषण और धार्मिक ध्रुवीकरण जैसे रूपों में भी सामने आती है। इसके पीछे राजनीतिक दलों द्वारा ध्रुवीकरण की रणनीति, असंतुलित मीडिया रिपोर्टिंग, और सोशल मीडिया पर झूठी सूचनाओं का प्रसार भी बड़ा कारण है। यह स्थिति न केवल अल्पसंख्यकों की सुरक्षा और सम्मान के अधिकारों का उल्लंघन करती है, बल्कि लोकतंत्र के मूल सिद्धांत– धर्मनिरपेक्षता, समानता और स्वतंत्रता– को भी चुनौती देती है। इससे न केवल सामाजिक सद्भाव को खतरा होता है, बल्कि देश की विकास प्रक्रिया और वैश्विक छवि पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः धार्मिक सहिष्णुता, आपसी संवाद और संविधान में निहित धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के पालन के माध्यम से ही सांप्रदायिकता को रोका जा सकता है और भारत को एक समरस, शांतिपूर्ण समाज की ओर अग्रसर किया जा सकता है।

राजनीति का अपराधीकरण और भ्रष्टाचार

भारतीय लोकतंत्र के समक्ष सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है राजनीति का अपराधीकरण और उससे जुड़ा व्यापक स्तर पर फैला भ्रष्टाचार। राजनीति का अपराधीकरण उस स्थिति को दर्शाता है जहाँ आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति चुनाव लड़ते हैं, सत्ता प्राप्त करते हैं और नीति निर्माण में भाग लेते हैं। पिछले कुछ दशकों में यह प्रवृत्ति चिंताजनक रूप से बढ़ी है। अनेक सांसद और विधायक ऐसे हैं जिन पर गंभीर आपराधिक मामले जैसे हत्या, अपहरण, बलात्कार या भ्रष्टाचार के आरोप लगे हुए हैं, फिर भी वे जनता के प्रतिनिधि बने हुए हैं। यह स्थिति लोकतांत्रिक प्रक्रिया की पवित्रता को भंग करती है और जनता का राजनीति तथा संस्थानों से विश्वास उठने लगता है। चुनावों में धनबल और बाहुबल का प्रभाव भी अपराधीकरण को बढ़ावा देता है, जहाँ राजनीतिक दल जीत की संभावना को देखते हुए आपराधिक छवि वाले उम्मीदवारों को टिकट देते हैं। इसके साथ ही, भ्रष्टाचार भी भारतीय राजनीति की एक गंभीर समस्या है, जो सत्ता का दुरुपयोग कर सार्वजनिक संसाधनों की लूट, घूस, भाई-भतीजावाद और पारदर्शिता की कमी के रूप में सामने आता है। विभिन्न घोटालों – जैसे 2G स्पेक्ट्रम, कॉमनवेल्थ गेम्स, कोयला घोटाला आदि – ने यह सिद्ध किया है कि किस प्रकार सार्वजनिक धन का दुरुपयोग राजनीति में भ्रष्ट तंत्र को जन्म देता है। इस स्थिति का समाधान केवल कानूनों के माध्यम से नहीं, बल्कि नैतिकता आधारित राजनीति, पारदर्शी चुनाव प्रक्रिया, न्यायपालिका की सक्रियता और जनता की सजगता से ही संभव है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा आपराधिक मामलों में त्वरित सुनवाई और दोषी पाए गए नेताओं की अयोग्यता जैसी पहलें सराहनीय हैं, लेकिन जब तक राजनीतिक दल स्वेच्छा से स्वच्छ छवि के उम्मीदवारों को प्राथमिकता नहीं देंगे, तब तक राजनीति का अपराधीकरण लोकतंत्र को भीतर से कमजोर करता रहेगा।

साहित्य की समीक्षा

दलाल, आर.एस. (2013) भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, जो विविधता, बहुलता और संविधानिक मूल्यों पर आधारित है। परंतु समय के साथ इसमें कई चुनौतियाँ उत्पन्न हुई हैं, जो इसकी मूल भावना को प्रभावित कर रही हैं। चुनावी सुधारों की आवश्यकता, धनबल और बाहुबल का बढ़ता प्रभाव, जनप्रतिनिधियों की जवाबदेही में कमी, मीडिया की निष्पक्षता पर प्रश्नचिन्ह, और सामाजिक असमानता जैसी समस्याएँ लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर कर रही हैं। साथ ही, नागरिकों की भागीदारी में गिरावट और सांप्रदायिकता व ध्रुवीकरण जैसी प्रवृत्तियाँ लोकतंत्र की गुणवत्ता पर असर डाल रही हैं। अतः भारतीय लोकतंत्र को सशक्त बनाने के लिए एक गहन आत्मनिरीक्षण और संस्थागत सुधार की आवश्यकता है ताकि यह अपने उद्देश्यों की पूर्ति कर सके।

दलाल, आर.एस. (2015)। इस शोध पत्र में दलाल ने भारतीय लोकतंत्र के भीतर छिपी उन आंतरिक चुनौतियों की पहचान की है जो इसके स्थायित्व और प्रभावशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। लेखक ने

विशेष रूप से राजनीतिक भ्रष्टाचार, जातिगत भेदभाव, और प्रशासनिक अक्षमता पर ध्यान केंद्रित किया है। दलाल का तर्क है कि लोकतंत्र केवल चुनाव कराने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और न्याय की सुलभता भी उतनी ही जरूरी है। लेख में यह भी बताया गया है कि जब तक राजनीतिक इच्छाशक्ति में पारदर्शिता और जवाबदेही नहीं आएगी, तब तक लोकतांत्रिक संस्थाएँ कमजोर बनी रहेंगी। दलाल अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में लोकतंत्र की मजबूती के लिए समाज और सरकार दोनों को आत्ममंथन करना आवश्यक है।

वार्ष्णेय, ए. (2007). वार्ष्णेय का यह लेख भारत की लोकतांत्रिक यात्रा में आई रुकावटों और चुनौतियों पर केंद्रित है। वे मानते हैं कि लोकतंत्र की सबसे बड़ी परीक्षा तब होती है जब विविधताएँ टकराने लगती हैं, और भारत जैसे बहुलतावादी देश में यह टकराव अक्सर सांप्रदायिक या जातिगत रूप में उभरता है। लेखक ने राजनीतिक दलों की भूमिका, चुनावी रणनीतियों और अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव जैसे पहलुओं को रेखांकित किया है। वार्ष्णेय के अनुसार, भारत का लोकतंत्र इसलिए टिका है क्योंकि इसकी जड़ें जमीनी स्तर तक फैली हैं, लेकिन इन जड़ों को समय-समय पर पोषण और सुधार की आवश्यकता होती है। लेख यह सुझाव देता है कि लोकतंत्र को मजबूत बनाए रखने के लिए केवल संस्थागत ढांचे नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता भी अनिवार्य है।

बेहरा, जी. बेहरा का लेख भारत में लोकतंत्र के "पतन" को रेखांकित करता है और इसकी प्रमुख चुनौतियों को सामने लाता है। लेखक का मानना है कि लोकतांत्रिक मूल्यों की गिरावट का मुख्य कारण शासन की अनियमितता, कमजोर संस्थान और बढ़ता राजनीतिक स्वार्थ है। उन्होंने विशेष रूप से संसद की कार्यप्रणाली, न्यायपालिका की निष्क्रियता और मीडिया के व्यापारिककरण को लोकतंत्र के क्षरण का कारक माना है। बेहरा का निष्कर्ष यह है कि जब तक नागरिक जागरूक नहीं होंगे और जवाबदेही तय नहीं होगी, तब तक लोकतंत्र केवल एक दिखावा बनकर रह जाएगा। यह शोध पत्र चेतावनी देता है कि लोकतंत्र केवल संविधान में नहीं, बल्कि व्यवहार और संस्कृति में भी जीवित रहना चाहिए।

वासुदेव, पी. (2020). वासुदेव का यह लेख समकालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय लोकतंत्र की चुनौतियों का विश्लेषण करता है। उन्होंने तकनीकी युग में सूचना के दुरुपयोग, फेक न्यूज़, सोशल मीडिया के ध्रुवीकरण और डेटा गोपनीयता जैसे नए मुद्दों को लोकतंत्र के लिए खतरा बताया है। साथ ही, पारंपरिक समस्याओं जैसे भ्रष्टाचार, शिक्षा में असमानता, और महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी की कमी पर भी प्रकाश डाला गया है। लेख यह भी संकेत करता है कि युवाओं में घटती राजनीतिक भागीदारी लोकतंत्र के लिए दीर्घकालिक चिंता का विषय है। वासुदेव का निष्कर्ष है कि लोकतंत्र को संरक्षित करने के लिए नागरिक शिक्षा, संस्थागत पारदर्शिता, और तकनीकी नियमन अनिवार्य हैं।

शिक्षा, निरक्षरता और जन-जागरूकता की कमी

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में शिक्षा और जन-जागरूकता लोकतंत्र की नींव को मजबूत करने वाले महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। शिक्षा न केवल व्यक्ति को ज्ञान देती है, बल्कि उसे अपने अधिकारों, कर्तव्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति सजग बनाती है। परंतु आज भी भारत में एक बड़ी आबादी निरक्षर है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों और हाशिए पर खड़े समुदायों में। राष्ट्रीय शिक्षा नीति और कई योजनाओं के बावजूद शिक्षा की गुणवत्ता, पहुँच और समानता के स्तर पर अभी भी अनेक चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

निरक्षरता केवल अक्षरों को न पढ़ पाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अवसरों से व्यक्ति को वंचित कर देती है। जब लोग अपने अधिकारों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रति जागरूक नहीं होते, तो वे आसानी से भ्रामक प्रचार, राजनीतिक शोषण और भ्रष्टाचार के शिकार बन जाते हैं। साथ ही, मतदान, नीति निर्धारण और शासन में भागीदारी जैसी प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी सीमित हो जाती है।

जन-जागरूकता की कमी का असर यह होता है कि लोग सामाजिक बुराइयों, पर्यावरणीय मुद्दों, स्वास्थ्य सेवाओं और कानूनी अधिकारों के प्रति भी उदासीन रहते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा को केवल साक्षरता तक न सीमित रखा जाए, बल्कि इसे व्यवहारिक, जागरूकतामूलक और अधिकार-केंद्रित बनाया जाए, ताकि हर नागरिक एक जिम्मेदार और जागरूक लोकतांत्रिक भागीदार बन सके।

मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर खतरा

भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ माना जाता है, जो सरकार और जनता के बीच सेतु का कार्य करता है और सत्ता को जवाबदेह बनाए रखने में अहम भूमिका निभाता है। लेकिन हाल के वर्षों में मीडिया की स्वतंत्रता और नागरिकों की अभिव्यक्ति के अधिकार पर बढ़ते खतरे गंभीर चिंता का विषय बन गए हैं। पत्रकारों पर हमले, झूठे मुकदमे, दबाव में की गई रिपोर्टिंग और असहमति व्यक्त करने वालों की गिरफ्तारी जैसी घटनाएँ इस खतरे को उजागर करती हैं। कई बार मीडिया संस्थान सरकारी दबाव, कॉर्पोरेट हितों या राजनीतिक पक्षधरता के कारण निष्पक्ष रिपोर्टिंग नहीं कर पाते, जिससे लोकतंत्र में सूचनाओं की पारदर्शिता प्रभावित होती है। सोशल मीडिया, जो कभी अभिव्यक्ति का एक खुला मंच माना जाता था, अब निगरानी, सेंसरशिप और फेक न्यूज़ के जाल में उलझता जा रहा है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने वाले कानूनों का दुरुपयोग कर विरोधी विचारों को दबाया जा रहा है, जिससे जनता के मन में डर और आत्म-सेंसरशिप की भावना जन्म ले रही है। प्रेस स्वतंत्रता सूचकांक में भारत की गिरती रैंकिंग इस संकट की गंभीरता को दर्शाती है। लोकतंत्र तभी मजबूत रह सकता है जब विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति, आलोचना और संवाद की संस्कृति जीवित रहे। इसलिए मीडिया की स्वतंत्रता की रक्षा, पत्रकारों की सुरक्षा

और नागरिकों को निर्भय होकर बोलने का अधिकार सुनिश्चित करना आज की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक आवश्यकता है।

संवैधानिक संस्थाओं की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप

भारतीय लोकतंत्र की स्थिरता और विश्वसनीयता का आधार उसकी संवैधानिक संस्थाएँ हैं, जैसे चुनाव आयोग, न्यायपालिका, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI), नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG), और मानवाधिकार आयोग। इन संस्थाओं का उद्देश्य शासन में पारदर्शिता, जवाबदेही और निष्पक्षता सुनिश्चित करना है। परंतु हाल के वर्षों में इन संस्थाओं की स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप की घटनाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं, जिससे उनकी निष्पक्षता और विश्वसनीयता पर सवाल उठने लगे हैं। चुनाव आयोग जैसे संस्थान पर राजनीतिक दबाव में निर्णय लेने के आरोप लगे हैं, जबकि CBI को 'तोता' कहे जाने जैसी टिप्पणियाँ इसकी स्वायत्तता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं। न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया और उच्च पदों पर नियुक्तियों को लेकर कार्यपालिका का हस्तक्षेप भी चिंता का कारण बन चुका है। इन संस्थाओं में पारदर्शिता की कमी और कार्यपालिका से बढ़ती नजदीकी लोकतंत्र के संतुलन को बिगाड़ सकती है। यदि संवैधानिक संस्थाएँ स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करेंगी तो जनता का विश्वास तंत्र से उठ सकता है और लोकतंत्र का क्षरण प्रारंभ हो जाएगा। लोकतंत्र में संस्थागत स्वायत्तता का महत्व इसलिए है क्योंकि यह शासन को निरंकुश बनने से रोकती है और नागरिक अधिकारों की रक्षा करती है। अतः यह आवश्यक है कि इन संस्थाओं की संरचना, कार्यप्रणाली और नेतृत्व की नियुक्तियाँ पारदर्शी, निष्पक्ष और संवैधानिक मर्यादाओं के अनुरूप हों, ताकि लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा सुनिश्चित की जा सके।

निष्कर्ष और समाधान

भारतीय लोकतंत्र अपनी विविधता, व्यापकता और जटिलताओं के बावजूद विश्व के सबसे बड़े और जीवंत लोकतंत्र के रूप में स्थापित है। स्वतंत्रता के बाद से अब तक इसने कई राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उतार-चढ़ाव देखे हैं, लेकिन इसकी नींव में निहित संविधान, स्वतंत्र संस्थाएँ और जागरूक नागरिकों की भूमिका ने इसे स्थायित्व प्रदान किया है। हालांकि, आज के समय में लोकतंत्र के समक्ष अनेक गंभीर चुनौतियाँ खड़ी हैं—राजनीति का अपराधीकरण, जाति और धर्म आधारित विभाजन, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश, मीडिया की निष्पक्षता में गिरावट, तथा संवैधानिक संस्थाओं पर हस्तक्षेप। ये सभी लोकतंत्र की आत्मा को आहत करने वाले कारक हैं, जिन पर समय रहते ध्यान नहीं दिया गया तो यह व्यवस्था केवल एक औपचारिक ढांचा बनकर रह जाएगी।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए बहुस्तरीय और सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। सबसे पहले, शिक्षा और जन-जागरूकता को बढ़ावा देना अत्यंत आवश्यक है ताकि नागरिक अपने अधिकारों, कर्तव्यों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के प्रति सजग बनें। राजनीतिक दलों को स्वेच्छा से स्वच्छ और योग्य उम्मीदवारों को

टिकट देना चाहिए तथा आपराधिक पृष्ठभूमि वालों को बाहर करना चाहिए। साथ ही, चुनाव आयोग, न्यायपालिका, CAG, और अन्य संस्थाओं की स्वायत्तता को कानूनी और व्यावहारिक रूप से मजबूत किया जाना चाहिए। मीडिया को अपनी भूमिका निष्पक्षता और उत्तरदायित्व के साथ निभानी चाहिए, जबकि सरकार को आलोचना और असहमति को लोकतंत्र की स्वस्थ परंपरा मानते हुए सहनशील रवैया अपनाना चाहिए। जब तक इन बिंदुओं पर ठोस और ईमानदार कार्य नहीं होगा, तब तक लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप सशक्त नहीं हो पाएगा। जागरूक नागरिक और जिम्मेदार संस्थाएँ ही भारत के लोकतांत्रिक भविष्य की रक्षा कर सकते हैं।

संदर्भ

1. दलाल, आर.एस. (2013)। भारतीय लोकतंत्र के लिए चुनौतियाँ: एक आत्मनिरीक्षण। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फिजिकल एंड सोशल साइंसेज*, *3* (3), 123-138।
2. दलाल, आर.एस. (2015)। भारतीय लोकतंत्र: कुछ आंतरिक चुनौतियाँ। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फिजिकल एंड सोशल साइंसेज*, *5* (6), 354-369।
3. वार्ष्णेय, ए. (2007). भारत की लोकतांत्रिक चुनौती. *विदेशी मामले*, *86*, 93.
4. बेहरा, जी. भारत में लोकतंत्र का पतन : इसकी प्रमुख चुनौतियाँ '. *इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मैनेजमेंट सोशियोलॉजी एंड ह्यूमैनिटीज़*, *13*.
5. वासुदेव, पी. (2020). भारतीय लोकतंत्र के लिए चुनौतियाँ. *सरकार और राजनीति*, 37.
6. शुक्ला, एस.के. (1994). भारत में लोकतंत्र: मुद्दे और समस्याएँ. *इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस*, *55* (4), 401-410.
7. सूद, जी. (2017)। भारत में संसदीय लोकतंत्र: कानूनी मुद्दे और चुनौतियाँ। *फैक्टा यूनिवर्सिटीटिस-कानून और राजनीति*, *15* (1), 95-109।
8. गहिर , एसआर बदलते वैश्विक परिदृश्य में लोकतंत्र के लिए चुनौतियां: भारत का पड़ोस परिप्रेक्ष्य।
9. साहा, ए.के. (2019)। भारतीय लोकतंत्र के लिए चुनौती: युवा पीढ़ी की धारणा। *अन्वेषा*, *12* (2), 21-30।
10. गुप्ता, डी.के., और बिस्वास, ए.के. (2021)। ई-लोकतंत्र का संस्थागतकरण: भारतीय संदर्भ में चुनौतियाँ, जोखिम और भविष्य की दिशाएँ। *जेडीईएम- ई-जर्नल ऑफ ई-डेमोक्रेसी एंड ओपन गवर्नमेंट*, *13* (1), 127-143।
11. सरकार, एस. (2001). भारतीय लोकतंत्र: ऐतिहासिक विरासत. *भारत के लोकतंत्र की सफलता*, 23-46.

12. थापा, जी.बी., और शर्मा, जे. (2009)। विद्रोह से लोकतंत्र तक: नेपाल में शांति और लोकतंत्र निर्माण की चुनौतियाँ। *अंतर्राष्ट्रीय राजनीति विज्ञान समीक्षा*, *30* (2), 205-219।

13. कैलमैन, एल.जे. (2019)। *लोकतांत्रिक भारत में विरोध: चुनौती के प्रति प्राधिकरण की प्रतिक्रिया*। रूटलेज।